मीमांसा

शिव सूत्र : जीवन सूत्र

आत्मा को अनुभव करो
ज्ञान को अनुभव करो
शरीर को अनुभव करो
शब्द मातृका को अनुभव करो

कश्मीर की पवित्र भूमि में एक महान साधक हुए आचार्य वसुगुप्त। वे केवल शास्त्रों के ज्ञाता नहीं थे, बल्कि उस सत्य की खोज में थे जो मनुष्य को उसके वास्तविक स्वरूप का बोध करा सके। उनके भीतर एक ही जिज्ञासा जलती रहती थी यदि सब शिव से उत्पन्न है, तो मनुष्य स्वयं को सीमित और दुखी क्यों अनुभव करता है? वे इसी प्रश्न को लेकर साधना और ध्यान में डूबे रहते।

एक रात ध्यानावस्था में उन्हें शिव का आह्वान अनुभव हुआ। जैसे भीतर कोई दिव्य संकेत मिला हो कि **सत्य कहीं बाहर नहीं, बस जागृत होने की प्रतीक्षा में है।**

उन्हें संकेत मिला कि एक विशेष शिला पर वह ज्ञान अंकित है, जो साधकों के लिए मुक्ति का मार्ग बनेगा। प्रातः काल वे उस दिशा में चले और अंततः एक पर्वतीय शिला तक पहुंचे। जब उन्होंने उस शिला को स्पर्श किया, तो वह पलट गई या खुल गई और उस पर दिव्य सूत्र अंकित दिखाई दिए। यही सूत्र आगे चलकर शिवसूत्र कहलाए।

कश्मीरी शैव परम्परा में शिव सूत्र का वर्णन आता है। शिव सूत्र चेतना के वैदिक दृष्टिकोण का पुनरावलोकन हैं। किंवदंती के अनुसार, वासुगुप्त (लगभग 800 ईस्वी, कश्मीर में) ने स्वप्न में इन सूत्रों को देखा था। शिव सूत्रों के कारण कश्मीर शैव धर्म का विकास हुआ।

इन सूत्रों की विशेषता यह है कि वे किसी दार्शनिक ग्रंथ की तरह विस्तार नहीं करते, बल्कि अत्यंत संक्षिप्त वचनों में साधक को उसके वास्तविक स्वरूप का बोध कराते हैं कि तुम सीमित जीव नहीं, स्वयं शिव चेतना के ही अंश नहीं, बल्कि शिव ही हो। वसुगुप्त ने इस ज्ञान को अपने शिष्यों तक पहुंचाया और वहीं से कश्मीर शैव दर्शन की एक महान परम्परा प्रवाहित हुई।

इस कथा का सार यही है कि **ज्ञान बाहर से नहीं आता; वह भीतर जागता है। जब साधक की जिज्ञासा सच्ची हो, मन निर्मल हो और साधना परिपक्व हो जाए, तब स्वयं शिव भीतर से सत्य प्रकट कर देते हैं।** शिवसूत्र की उत्पत्ति केवल एक ऐतिहासिक घटना नहीं, बल्कि इस सत्य का प्रतीक है कि जब साधक तैयार होता है, तब ज्ञान स्वयं उसके द्वार पर आ खड़ा होता है।

प्रथम सूत्र है – चैतन्य आत्मा

आत्मा चैतन्य है, क्योंकि आत्मा ही शिव है। चैतन्यता का अर्थ है अपने भीतर चल रहे दर्शन का ज्ञान होना। **संसार दो तरह से जिया जाता है एक होता है भक्षक, जो सुखों और दुखों को भोग रहा है भोगता; और दूसरा है दर्शक या द्रष्टा, जो केवल देख रहा होता है।** उसे भोगना नहीं है। वह दूर से सब कुछ देख रहा होता है, अच्छा भी और बुरा भी। उसका स्वर भी मंद है; वह कुछ कहता नहीं, पर सुनता सब है।

लेकिन ऐसा नहीं है कि वह प्रतिकार करेगा या युद्ध लड़ेगा; वह बस अनुभव करता है क्योंकि वह चेतन है और हर अनुभूति को अवशोषित करता है।

पहला सूत्र यही है कि आत्मा चैतन्य है अर्थात जाग्रत तो है, परंतु क्रियारत नहीं होती। जैसे अर्ध-नींद में सब सुनाई देता है पर आंखें बंद रहती हैं, वैसी ही मनोदशा आत्मा की है। अनुभूति होती है पर वह भागीदारी नहीं करती।

यह ज्ञान उस सोच का एक प्रकार का प्रतिपक्ष है कि आत्मा सर्वशक्तिमान है। आत्मा की शक्ति उतनी ही प्रकट होती है जितनी हम उसके स्वर को दृढ़ होने की अनुमति देते हैं।

दूसरा सूत्र है - ज्ञानम् बन्धः

ज्ञान बंधन है। यह कैसा विरोधाभास है? ज्ञान बंधन कैसे हो सकता है? वह तो मुक्त करता है। लेकिन यह तभी संभव होगा जब ज्ञान अनुभवजन्य हो। शरीर एक पात्र है, जो अनुभव एकत्र करने आया है। ये अनुभव अच्छे हों या बुरे, दोनों उस आत्मा के हित में हैं, जो उस शरीर की चेतना है। **बिना आत्मा के शरीर का कोई मूल्य नहीं यह तो सब जानते हैं; लेकिन यह भी उतना ही सत्य है कि बिना शरीर के आत्मा प्रेत कही जाती है। वह भटक सकती है, पर अनुभव कैसे जोड़ेगी?**

थोड़ा ज्ञान अक्सर अलगाव पैदा करता है। इस ज्ञान के कारण लोग अपने को दूसरों से श्रेष्ठ मानने लगते हैं। उनमें यह अहंकार आ जाता है कि वे दूसरों से श्रेष्ठ हैं। यह श्रेष्ठता ज्ञान के कारण हो सकती है, जाति के कारण या धन के कारण। जबकि यथार्थ में इस विशाल सृष्टि में हम सब एक बूंद के समान हैं, और यदि एक बूंद स्वयं को दूसरी से श्रेष्ठ समझे, तो वह उसी बूंद का अज्ञान है।

ज्ञान को अर्थ प्रेम और करुणा देते हैं। इसलिए कबीर को कहना पड़ा -

पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।

क्योंकि ज्ञान अक्षरों में नहीं, बल्कि उन अक्षरों के मर्म में है। कितना ही पढ़ लिया जाए कि क्षमा परम धर्म है, पर जीवन में किसी को क्षमा किया ही नहीं, तो यह ज्ञान कितना खोखला है, एक बंधन की तरह जो मन को मथता रहता है।

ज्ञान के साथ एक और समस्या है, यह सोच को बांध देता है। मन की उड़ान पर ज्ञान लगाम खींच देता है, क्योंकि ज्ञान मौलिक प्रश्नों को मूर्खतापूर्ण प्रश्न कहकर हमारी जिज्ञासा को संकुचित कर देता है।

जैसे कभी किसी ने सोचा कि वृक्ष का रंग हरा क्यों है और मनुष्य का क्यों नहीं? हाँ, क्लोरोफिल इसका उत्तर है, पर किसी वयस्क में इतना साहस नहीं होता कि वह इस प्रश्न को सबके सम्मुख रख सके, जबकि एक बालक इसे निसंकोच कह सकता है, क्योंकि उसे विज्ञान का ज्ञान नहीं होता।

तीसरा सूत्र है - योनि वर्गः कला शरीरम्

यहां पर योनि का अर्थ एक शरीर है। शैव सिद्धांत के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि 36 तत्त्वों से निर्मित मानी जाती है। तत्त्व, अस्तित्व के वे मूल सिद्धांत या घटक जिनसे चेतना से लेकर स्थूल भौतिक जगत तक की पूरी रचना होती है। इन तत्त्वों के माध्यम से यह समझाया जाता है कि अनंत शिव चेतना किस प्रकार क्रमशः सीमित अनुभव, मन, इंद्रियों और अंततः भौतिक जगत के रूप में प्रकट होती है। इस दर्शन का मूल भाव यह है कि जो कुछ ब्रह्माण्ड में है वही सूक्ष्म रूप में मनुष्य के भीतर भी विद्यमान है।

इन 36 तत्त्वों का पहला स्तर शुद्ध तत्त्वों का है, जो पूर्ण चेतना का क्षेत्र है जहाँ द्वैत नहीं होता। शिव तत्त्व शुद्ध, निराकार और निष्क्रिय चेतना का प्रतीक है, जबकि शक्ति तत्त्व उसी चेतना की सृजनशील गतिशील शक्ति है। **सदाशिव तत्त्व में 'मैं' की चेतना प्रमुख रहती है और जगत**

सूक्ष्म रूप में उपस्थित रहता है। ईश्वर तत्त्व में जगत का अनुभव प्रमुख हो जाता है, और शुद्ध विद्या तत्त्व में 'मैं' और 'यह जगत' दोनों का संतुलन स्थापित होता है। यहां तक चेतना अपनी पूर्णता में रहती है।

इसके बाद चेतना सीमित अनुभव की ओर प्रवेश करती है, जिसे शुद्ध-अशुद्ध तत्त्वों का क्षेत्र कहा जाता है। यहां माया तत्त्व अनंत चेतना को सीमित अनुभव में बदल देती है।

माया के प्रभाव से पाँच आवरण या कंचुक उत्पन्न होते हैं, और छठा आवरण स्वयं माया है।

ये पर्दे चेतना की शक्ति को संकुचित कर देते हैं।

पहला पर्दा है कला, जो हमारी अनंत सामर्थ्य को सीमित कर देता है।

दूसरा पर्दा है विद्या, जो हमें मान्यता और दूसरों की स्वीकृति के अधीन कर देता है।

तीसरा पर्दा है राग या मोह, जिसमें हम बांट लेते हैं यह मेरा है, यह मेरा नहीं है। जो मेरा है, उसके लिए विशेष आग्रह और आसक्ति पैदा हो जाती है।

चौथा पर्दा है काल, जिसमें उलझकर हम अनंत चेतना को दिन-रात, महीने और वर्षों के खंडों में बांट देते हैं और फिर नए साल के आने पर प्रसन्न भी होते हैं, जबकि वास्तव में नया कुछ भी नहीं होता; जीवन तो उसी धारा में चलता रहता है।

पांचवां और सबसे महत्वपूर्ण पर्दा है पुरुष, अर्थात् 'मैं' की भावना व्यक्तिगत अस्तित्व का अनुभव।

ये पांचों पर्दे हमें उस अनंत चेतना से अलग कर देते हैं। और जब हमें पुनः उसी चेतना से जुड़ना होता है, तब इन पर्दों को हटाना पड़ता है धीरे-धीरे, एक-एक करके।

इसके बाद सृष्टि का स्थूल और मानसिक क्षेत्र आता है जिसे अशुद्ध तत्त्व कहा जाता है। यहां प्रकृति समस्त भौतिक सृष्टि का मूल कारण बनती है। **प्रकृति से बुद्धि उत्पन्न होती है, जो निर्णय की शक्ति है; बुद्धि से अहंकार उत्पन्न होता है, जो 'मैं' की भावना देता है; और अहंकार से मन की उत्पत्ति होती है, जो संकल्प-विकल्प करता है।**

इसके बाद पांच ज्ञानेंद्रियां उत्पन्न होती हैं - श्रवण, स्पर्श, दृष्टि, रस और गंध का अनुभव करने वाली इंद्रियां। इनके साथ पांच कर्मेंद्रियां आती हैं - वाणी, हाथ, पैर, उत्सर्जन और प्रजनन अंग जिनसे क्रिया सम्पन्न होती है।

इसके पश्चात पांच सूक्ष्म तत्त्व या तन्मात्राएं उत्पन्न होती हैं - शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध जो अनुभव के मूल गुण हैं।

अंत में पांच महाभूत प्रकट होते हैं - आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी, जिनसे स्थूल जगत और शरीर का निर्माण होता है।

इस प्रकार शिव की अनंत चेतना क्रमशः सीमित अनुभव, मन, इंद्रियों और भौतिक जगत के रूप में प्रकट होती है। शैव सिद्धांत का सार यह है कि मनुष्य केवल शरीर नहीं, बल्कि चेतना से पृथ्वी तत्त्व तक की सम्पूर्ण सृष्टि का सूक्ष्म रूप है। **साधना का उद्देश्य इसी यात्रा को उलट कर समझना है अर्थात् स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्म से शिव चेतना तक पुनः लौटना।**

चौथा सूत्र है - ज्ञानाधिष्ठानं मातृका

ज्ञान का अधिष्ठान मातृका है।

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी ।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसा-क्षिणी

देवी स्वरूप शक्ति समस्त मंत्रों में मातृका अर्थात् मूलाक्षर में प्रतिष्ठित हैं और शब्दों में ज्ञान रूप से स्थित हैं। ज्ञान में चिन्मयातीता रूप में और शून्यों में शून्यसाक्षिणी के रूप में रहती हैं। जिनके अतिरिक्त और कुछ भी श्रेष्ठतम नहीं है।

ज्ञान का स्रोत शब्द है और शब्द है ईश्वर की ध्वनि शक्ति। शब्द चेतना को प्रभावित करते हैं और चेतना हमें। हम जो भी बनते हैं, अपनी चेतना के प्रारूप के अनुसार ही बनते हैं।

इसलिए शब्दों के प्रयोग में सावधानी बरती जाती है। क्योंकि शब्द ईश्वर की शक्ति हैं, अच्छा बोलो तो विचार अच्छा होता है और बुरा कहो तो विचार दूषित होता है।

विचारों की शुद्धता शब्दों के आश्रय में फलती-फूलती है एवं शब्द मातृकाओं के अधीन हैं और वास्तव में मातृका की शक्ति को नमन है। मात्रा के अंतर से अर्थ बदल जाते हैं, दिन-दीन, जैसे मात्रा शब्द के निर्माण में सेतु है, और इस मात्रा की शक्ति मातृका हैं।